प्रवेशांक | जून, 2023

पर्यावरण संवाद

प्रकृति एवं देशज संस्कृति के संरक्षण और संवर्द्धन के लिए

जैव विविधता से सम्पन्न अजय नदी अब मरणासन्न

देश की माटी

देश की माटी, देश का जल
हवा देश की, देश का फल
सरस बने, प्रभु सरस बने।

देश के घर और देश के घाट
देश के वन और देश के बाट
सरल बने, प्रभु सरल बने।

देश के तन और देश के मन
देश के घर के भाई-बहन
विमल बने, प्रभु विमल बने।

- **गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर**
अनुवाद - कविवर भवानी प्रसाद मिश्र

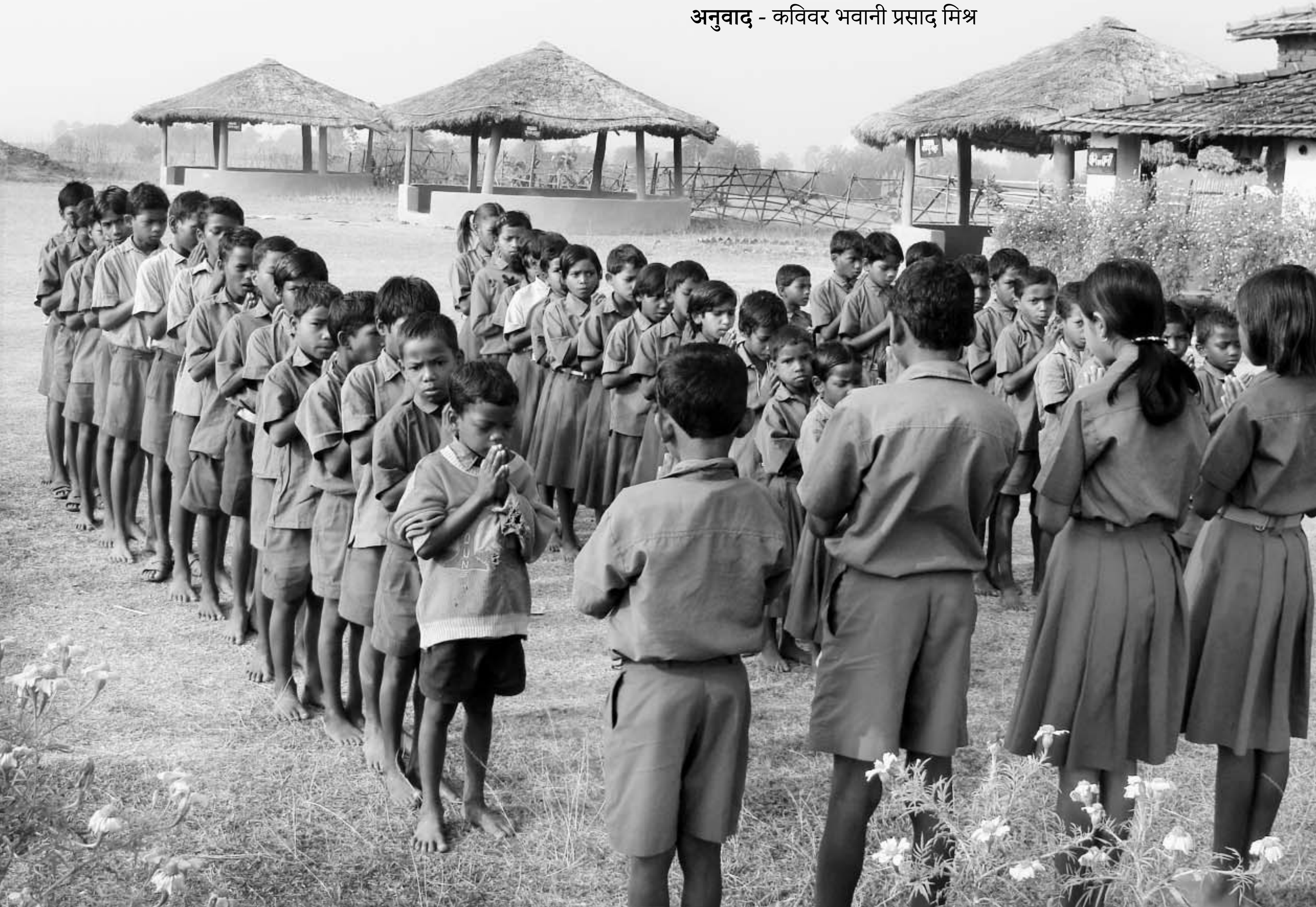

संपादक
घनश्याम

संपादक मंडल
उदय
अबरार ताबिन्दा
पूनम रंजन
सीमांत सुधाकर
महेश मिश्रा
तहा सैफुद्दीन
इनामुल हक
साल्गे मार्डी
ऐनी टुडू
श्रावणी
शशि बारला
मति मुर्मू

संवाद सूत्र
माालती कुमारी
अश्विनी महाराणा
संजय समीर एक्का
आनंद मरांडी
कुर्दुला कुजुर
कुंदन कुमार भगत
सीमा
सुशिला हेम्ब्रम
मनीला बास्की

कला संपादक
शेखर

साज-सज्जा
जमील व जावेद

संपादन कार्यालय
पर्यावरण कक्ष "संवाद" 52 बीघा,
मधुपुर, झारखण्ड
की ओर से प्रकाशित
मुख्य कार्यालय
'संवाद', 104/A उर्मिला इन्क्लेव,
पीस रोड, राँची - 834001

घनश्याम द्वारा संपादित एवं प्रकाशित तथा
कैलाश पेपर कन्वर्शन प्रा. लि., राँची द्वारा मुद्रित
सीमित प्रसार

- **व्यक्तित्व**
  स्वर्गीय विनय कुमार सिंह : पेड़ों को समर्पित एक फौजी - **पर्यावरण डेस्क** 5
- **झारखण्ड का पर्यावरण**
  सूखते जल स्रोत : बंजरीकरण में तब्दील होता झारखण्ड - **महेश मिश्रा** 6
- **देश-दुनिया का पर्यावरण**
  रूस-यूक्रेन युद्ध : दुनिया के पर्यावरण पर दुष्प्रभाव - **अबरार ताबिन्दा** 7
- **जल-वायु संकट** 8
  मरती नदी अजय – **महेश**
- **प्रयोग**
  लालपुर : स्वावलंबन की ओर बढ़ता एक गाँव : जितेन्द्र चाहर एवं अरूण कुमार 9
- **महिला और पर्यावरण**
  जंगल हमर नईहर: मूर्ति देवी ने कहा - **घनश्याम** 10
- **खेती-किसानी-बागवानी**
  मेड़िया की बागवानी - **साल्गे मार्डी** 11
  दुमका की खेती किसानी - **एनी टुडू/सरिता मुर्मू** 11
- **जैव विविधता**
  विलुप्त होती जैव विविधता - **तहा सैफुद्दीन** 12
- **वन और वनोपज**
  महिलाओं के रोजगार का माध्यम - **गुलाब** 13
- **खान-पान**
  'फास्ट फूड' बनाम 'स्लो फूड' - **घनश्याम** 14
- **रहन-सहन**
  देशज चिकित्सा ज्यादा प्रासंगिक - **श्यामलाल** 15
- **कलम कूची और कैमरा**
  आदिवासी चित्रकला में पर्यावरण - **शेखर** 16

पर्यावरण संवाद : एक अभिक्रम, एक अभ्यास

5 जून विश्व पर्यावरण दिवस है और संपूर्ण क्रांति दिवस भी! दोनों हमारे लिए परिवर्तन का संवाहक रहा है।

हमारा समाज पर्यावरण का संरक्षक तथा क्रांति शोधक रहा है। 'हमारे समाज' का यहां सीधा अर्थ है झारखंडी समाज! हजारों वर्षो से यहां का समाज अपनी धरती और धरोहरों को सहजीवी मानता रहा है तथा इसके संरक्षण के लिए संघर्ष करता रहा है। यहाँ का समाज धरती को संपत्ति नहीं मानता और न जल-जंगल-जमीन को बिक्री की वस्तु! धरती, जल और जंगल हमारे लिए मानव जीवन, जीविका के उपादान हैं और अन्य प्राणियों के लिए सहजीवी आधार। इस अर्थ में झारखंडी समाज (आदिवासी और मूलवासी) परस्परावलंबी समाज है। वैसे देखें तो पूरा मानव समाज ही अपने उद्भव से परस्परावलंबी रहा है। इसीलिए तो मनुष्य को सामाजिक प्राणी माना जाता है।

आज इसी मनुष्य को असामाजिक बनाने और प्राकृतिक धरोहरों को विनष्ट करने की ओर धकेला जा रहा है। सुसंस्कृति के खिलाफ अपसंस्कृति खड़ी की जा रही है। परिणामत: आज पूरी दुनिया के सामने पर्यावरण का घोर संकट पैदा हो गया है। जिसमें से "जलवायु संकट" आज सबसे भयावह संकट के रूप में सबके सामने मुंह बाये खड़ा है।

इन संकटों से लड़ते हुए पिछले 49 वर्षों में हम सबों ने महसूस किया है कि स्वशासन, स्वावलंबन और स्वाभिमान की प्रक्रिया को गहरी और व्यापक बनाए बिना इन समस्याओं से निजात नहीं पाया जा सकता। समुदाय जितना चेतनशील और श्रमशील होगा उतना ही और उसी अनुपात में इन गहरे संकटों से मुक्ति मिलेगी।

"पर्यावरण संवाद" इसी अभ्यास का एक अभिक्रम है। यह अभिक्रम आपके सहयोग और सद्भाव से ही आगे बढ़ सकेगा। इसलिए हमें आपका तहे दिल से सहयोग चाहिए। लेखन में भी और प्रसारण में भी।

आइए, मिलजुल आगे बढ़ें – अपने पर्यावरण के संरक्षण और संवर्द्धन के लिए!

***

जैसा कि पहली पंक्ति में उद्धृत किया गया है कि 5 जून सम्पूर्ण क्रांति दिवस भी है। अधिकांश पाठकों को यह याद होगा कि 5 जून 1974 को पटना के गांधी मैदान में लाखों आंदोलनकारियों के बीच सम्पूर्ण क्रांति का आह्वान महान क्रांतिकारी लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने किया था। उन्होंने सम्पूर्ण क्रांति को परिभाषित करते हुए कहा था- सम्पूर्ण व्यवस्था और ढांचा में अमूलचूल परिवर्तन करते हुए समतामूल समाजिक-आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण ही सम्पूर्ण क्रांति का लक्ष्य है। इस दृष्टि से देखें तो आज सम्पूर्ण क्रांति ज्यादा प्रासंगिक हो गई है।

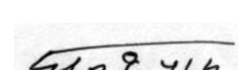

स्वर्गीय विनय चन्द्र सिंह : पेड़ों को समर्पित एक फौजी

यह कहानी एक ऐसे फौजी की है जिन्होंने एयर फोर्स में रहकर "एयर" की महत्ता को समझा था और नौकरी से अवकाश प्राप्त करने के बाद प्राणवायु के संरक्षण और संवर्द्धन के लिए पेड़ों और जंगलों को बचाना अपना ध्येय बना लिया था। आज मधुपुर (झारखंड) के पश्चिमी-उत्तरी छोर पर अगर जंगल बचा है, तो उसका पहला श्रेय स्व. विनय चंद्र सिंह को जाता है।

स्व. विनय चंद्र सिंह थे तो मूल निवासी बलिया के, लेकिन उनके पिता जी रेलवे में काम करने के दौरान मधुपुर में बस गए थे। यहीं उनका जन्म 4 फरवरी, 1932 में हुआ था। यहीं उनका शरीर पंचतत्व में समाया 24 सितम्बर, 1988 को। क्योंकि दिल का दौरा पड़ने के कारण उनकी मौत दिल्ली में हुई थी और हवाई जहाज से उनके शव को रांची लाया गया था, फिर मधुपुर। यहीं उनका अंतिम संस्कार हुआ।

स्व. विनय सिंह को हमसब चाचा कहकर पुकारते थे। गांव के लोग उन्हें प्यार से, मिलिटरिया चाचा कहते थे। 1971 में वे अवकाश प्राप्त कर मधुपुर आ गए थे और उन्हें 8 एकड़ बंजर और पथरीली जमीन शासन द्वारा मधुपुर के हथियापाथर में दी गई। एक फौजी जैसे चुनौतियों का सामना करते हुए समस्यायों पर फतह पाता है वैसी ही फतह उन्होंने इस पथरीली जमीन पर पाई। अपने संकल्प और मेहनत के बल पर कुछ ही वर्षों में उन्होंने इस जमीन को सुजलाम-सुफलाम बना दिया।

आज भी इस जमीन पर विभिन्न प्रकार के सैकडों पेड़ लहलहा रहे हैं। वहां की पूरी जमीन बायोमास से भरी है। दर्जनों प्रकार की चिंड़िया जब चहचहाती है तब लगता है विनय सिंह गीत गा रहे हैं। उनका पोता शमशेर (विनय सिंह द्वारा गोद लिए पुत्र अलाउद्दीन का बेटा। यह कहानी भी रोचक और प्रेरित करने वाली है।) कहता है कि अभी इस परिसर में दर्जनों किस्म के सांप हैं, जो मुक्त हो कर विचरण करते रहते हैं। उनके गुजर जाने के 35 वर्ष बाद भी अगर यह जमीन आबाद है तो उनके द्वारा शिक्षित, प्रशिक्षित और दीक्षित अलाउद्दीन के कारण।

जेपी आंदोलन के दौरान विनय चाचा से हमसबों का परिचय हुआ था। और वे हमसबों के साथ मधुपुर के गांधी चौक पर उपवास में भी बैठे थे। तब से वे इतने घुल-मिल गए कि सतत मिलने जुलने और जानकरी बांटने का सिलसिला जारी रहा। 1980 में उन्होंने ही हमसबों को जानकारी दी कि चेचाली और जीतपुर जंगल नीलाम हो चुका है और यह कटना प्रारंभ हो रहा है। इस जंगल को कटने से बचाना है। हमसब उनके साथ साइकिल पर जीतपुर के लिए निकल पड़े। वहां गांव के लोग इकट्ठा हुए।

जंगल के नीलाम होने की पूरी जानकारी मिली।वहीं यह योजना बनी कि इस जंगल के प्रभाव क्षेत्र में आने वाले गांव के लोगों के साथ बैठक की जाए। कुछ दिन के प्रयास के बाद एक बड़ी बैठक हुई। इस बैठक में विनय चाचा ने चिपको आंदोलन की कथा सुनाई और यह नारा लगवाया – "क्या हैं जंगल के उपकार?/मिट्टी, पानी और बयार/ मिट्टी, पानी और बयार/ये हैं जीवन के आधार।"

यह नारा और चिपको की कहानी ने जीतपुर और आसपास के लोगों को इतना प्रभावित किया कि आंदोलन व्यापक रूप ले लिया और तीन महीने बाद बिहार सरकार को झुकना पड़ा और नीलामी वापस लेनी पड़ी। इसमें कई साथियों को जेल भी जानी पड़ी लेकिन अंतत: आंदोलन की जीत हुई और जंगल कटने से बच गया। इस आंदोलन में अरविंद जी, श्रीकिसुन, भवानी, गुंशी सोरेन, जगदीश मरांडी, अनिल दास, बाबूलाल और घनश्याम ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। लेकिन सूत्रधार की भूमिका में विनय चाचा थे। आज वे नहीं हैं, लेकिन उनकी यादें आज भी वहां के लोगों में जीवित हैं।

प्रस्तुति : पर्यावरण डेस्क

सूखते जल-सोत : बंजरीकरण में तब्दील होता झारखंड

झारखंड विभिन्न प्रकार के जल-सोतों का भंडार रहा है। एक तरफ जहां सदासलिला छोटी-बड़ी नदियां रही हैं वहीं एक लाख से ऊपर जलाशय तथा झारखंड के लगभग सभी गांवों में जोरिया (छोटे जलस्रोत) रहे हैं। शरीर की रक्तवाहिनी की तरह यह प्रवाहित होती रहती हैं। हजारों सालों से यहां के किसानों ने अपनी खेती-किसानी की परंपरा विकसित की है। इसके कारण यहां के लोग अनाज, दलहन और साग-सब्जी के मामले में स्वावलंबी रहे हैं। लेकिन अब स्थितियां तेजी से बदलती जा रही हैं। कथित विकास के नाम पर जहां एक तरफ यहां के सघन वनों का विनाश हुआ है वहीं भूक्षरण के कारण नदियों में गाद भरते जा रहे हैं। इतना ही नहीं शहरीकरण के विस्तार के कारण नदियों के बालू का अंधाधुंध दोहन शुरू हो गया है परिणामत: नदियां, जलाशय सूखते जा रहे हैं।

भारत सरकार द्वारा प्रकाशित नदियों के प्रथम सेंसस के अनुसार झारखंड में कुल 107598 जलाशय हैं। इनमें 106176 गांवों में और 1422 शहरी इलाके में हैं। 1689 जलाशयों पर निर्माण कार्य होने से उनका उपयोग नहीं हो पा रहा है। राज्य के 560 जलाशयों का अतिक्रमण हो चुका है। जल संरक्षण के लिए किए गए प्रयास में झारखंड का पांचवां स्थान है। इसमें 472 तालाब, 37 जल संरक्षण के लिए बनाया गया परकोलेशन टैंक व चेक डैम, 30 टैंक, 12 रिजर्वायर, पांच झील और एक अन्य जलाशय है। इनमें से 22 जलाशयों में 25 फ़ीसदी पर कब्जा है। 7 जलाशयों पर 25 से 75 फ़ीसदी तक कब्जा है। तालाबों की संख्या के मामले में झारखंड पूरे देश में पांचवें स्थान पर है।

राज्य के 1731 जलाशयों में कचरा भर गया है। 894 जलाशयों को ऐसा नुकसान पहुंचाया गया है जिसका पुनरुद्धार भी नहीं हो सकता है। 147 जलाशयों का पानी खारा है। औद्योगिक कचरा के कारण 114 जलाशयों का उपयोग नहीं हो पा रहा है। 4416 जलाशय अन्य कारणों से उपयोग के लायक नहीं रह गए हैं।

झारखंड के 72% जलाशयों का उपयोग सिंचाई के लिए होता है। जारी रिपोर्ट के मुताबिक औद्योगिक काम में मात्र 1077 जलाशय ही आते हैं। मत्स्य पालन के लिए 12721 जलाशयों का उपयोग हो रहा है। 4000 जलाशयों का उपयोग घरेलू काम में होता है। 395 जलाशयों का उपयोग मनोरंजन के लिए हो रहा है। ग्राउंडवाटर रिचार्ज के लिए 5036 जलाशयों का उपयोग हो रहा है।

रिपोर्ट में बताया गया है कि राज्य के आधे से अधिक जलाशयों में सालों भर पानी रहता है। करीब 55.5 फ़ीसदी में पूरे साल पानी रहता है। इसके अतिरिक्त 13.1 फीसदी जलाशयों में हर साल पानी भरता है। 28 फ़ीसदी से अधिक जलाशयों में कभी-कभी पानी आता है। 3 फ़ीसदी जलाशय ऐसे हैं जहां पानी बहुत ही कम रहता है।

झारखंड के कुल जलाशयों में 87878 का निर्माण सरकारी या गैर सरकारी स्तर से कराया गया है। मात्र 19% जलाशय ही प्राकृतिक रूप से विकसित हैं। यहां कुल 87080 तालाब और 45000 टैंक हैं। 135 झील, 3763 जलाशय और 12008 जल संरक्षण के लिए बनाए गए परकोलेशन टैंक या चेक डैम है। सैकड़ों तालाबों का अतिक्रमण कर लिया गया है। एक तरफ वनों के विनाश के कारण जहाँ भूक्षरण तेजी से बढ़ रहा है, वहीं प्राकृतिक जलस्रोत सूखते जा रहे हैं। नदियों की स्थिति बालू की तस्करी के कारण बहुत खराब हो गई है। परिणामत: झारखण्ड का बहुत सारा भाग भू धसान की ओर बढ़ रहा है। यह दर्शाता है कि झारखण्ड बंजरीकरण की ओर तेजी से बढ़ रहा है।

- महेश मिश्रा

रूस-यूक्रेन युद्ध का पर्यावरण पर दुष्प्रभाव

आधुनिक काल में जब दो देशों के बीच युद्ध होता है तो उसका दुष्प्रभाव राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों पर पड़ता ही है। साथ ही साथ युद्ध का अधिक घातक प्रभाव पर्यावरण पर भी पड़ता है। पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव का खामियाजा पूरे विश्व को भुगतना पड़ता है। रूस और यूक्रेन के बीच एक वर्ष से अधिक समय से युद्ध चल रहा है। इस युद्ध में परमाणु बम का इस्तेमाल होने की आशंका, विश्व के सुधिजनों द्वारा लगातार जतलायी जा रही है। साथ ही विश्व युद्ध छिड़ जाने की संभावना मीडिया द्वारा व्यक्त की जा रही है।

प्राप्त जानकारी के अनुसार पूरे विश्व में अभी 50 हजार से भी ज्यादा परमाणु बम मौजूद हैं जिससे पूरी दुनिया को दर्जनों बार विनष्ट किया जा सकता है। अभी तक हिरोशिमा और नागासाकी पर ही परमाणु बमों का इस्तेमाल किया गया है उसके कारण ये दोनों शहर पलक झपकते ही बर्बाद हो गए। वे शहर आज भी परमाणु बम के दुष्परिणाम झेल रहे हैं।

रूस ने अपने परमाणु हथियारों से संबंधित टीम को हाई अलर्ट पर रखा है। पर्यावरणविदों का अंदाजा है कि परमाणु बम इस्तेमाल होने के बाद करीब 1.6 से 3.6 करोड़ टन गर्द और राख मीलों तक आसमान पर छा जाएगा जिसके कारण ओजोन लेयर को काफी नुकसान होगा और सूर्य की रोशनी धरती पर मद्धिम हो जाएगी। इन कारणों से मौसम में भारी बदलाव आ सकता है। वर्षा कम होगी जिससे फसलों की पैदावार जरूरत से कहीं कम होगी। भुखमरी और अकाल से धरती पर बसने वाले जीव को दो-चार होना पड़ सकता है।

अल्प वर्षा के साथ-साथ कहीं-कहीं अति वृष्टि भी हो सकती है और दोनों स्थितियों में धरती के जीव जंतु को भारी विनाश का सामना करना पड़ सकता है। रेडियो एक्टिविटी के कहर के साथ-साथ सूर्य से निकलने वाली पैराबैंगनी किरणों के दुष्प्रभाव के कारण मानव सभ्यता के समाप्त हो जाने की आशंका है।

परमाणु बमों के प्रयोग के बाद विश्व पर पड़ने वाले खतरनाक दुष्प्रभाव के आलोक में पर्यावरण विद्वानों ने आकलन करना शुरू कर दिया है। अभी एक वर्ष से अधिक दिनों तक रूस यूक्रेन के बीच लगातार चल रहे युद्ध में हर रोज टनों बम बारूद का प्रयोग किया जा रहा है। साल भर में करोड़ों टन गोला- बारूद इस्तेमाल में लाया जा चुका है।

जिस से उठने वाले गर्द और राख हमारे पर्यावरण को काफी नुकसान पहुंचा रहे हैं, इस कारण मौसम चक्र में काफी बदलाव देखने को मिल रहा है। आगे और भी भयानक दुष्परिणाम सामने आने की आशंका व्यक्त की जा रही है।

मानव जनजीवन, जीव जंतु के साथ-साथ सभी तरह के जीवों और निर्जीव पर घातक दुष्प्रभाव पड़ने की आशंका दिन-प्रतिदिन प्रबल होती जा रही है।

मदर ऑफ ऑल बम का प्रयोग रूस द्वारा किया गया है। मिसाइलों द्वारा अभी तक लाखों टन बारूद का इस्तेमाल किया जा चुका है। आज के आधुनिक हथियारों के युग में युद्ध कहीं भी हो, उसका दुष्प्रभाव ग्लोबली पड़ता है।

इन युद्धों के कारण पर्यावरण को जितनी अधिक क्षति पहुंचेगी, मानव सभ्यता उसी अनुपात में उतनी ही जल्द विनाश के कगार पर पहुंचती चली जायेगी।

- अबरार ताबिंदा

मरती नदी : अजय

सदा सलिला अजय नदी अब मरणासन्न हो गई है। यह झारखंड की खूबसूरत नदियों में से एक है। बिहार के जमुई जिले के चकाई वनप्रांतर से निकलकर 132 किलोमीटर की यात्रा बिहार- झारखंड में करते हुए वर्द्धमान जिले में प्रवेश करती है। इसके पहले यह देवघर, दुमका, जामताड़ा की यात्रा करती है। यह क्षेत्र सघन वनों और पहाड़ों-पर्वतों से घिरा हुआ है। झारखंड में लंबी यात्रा करने के बाद यह नदी काली पहाड़ी के पास पश्चिम बंगाल में प्रवेश करती है और कटवा के पास भागीरथी में समाहित हो अपनी यात्रा को विराम देती है। यह कहा जा सकता है कि अजय नदी झारखंड एवं बंगाल के अधिकांश क्षेत्रों का मेरुदंड है।

अजय बेसिन में बिहार और झारखंड के पांच जिले जमुई, जसीडीह, देवघर, जामताड़ा और दुमका आते हैं, की कृषि व्यवस्था को बढ़ाने में इस नदी- बेसिन की महत्वपूर्ण भूमिका है। नदी के दोनों किनारों पर दोमट मिट्टी होने के कारण यहां की जमीन काफी उर्वरा है।

लेकिन यह खूबसूरत नदी अब मरणासन्न स्थिति में है। विनाशकारी विकास की विभिन्न योजनाओं से अजय बेसिन में सघन वनों का न सिर्फ विनाश किया है बल्कि इस इलाके को वीरान बनाकर छोड़ दिया है। इस बेसिन के आसपास पाए जाने वाले ग्रेनाइट पत्थर इस नदी बेसिन के विनाश का कारण बन गया। इसके दोनों छोरों पर सैकड़ों पत्थर की खदानें खोदी जा रही हैं और पहाड़ तोड़े जा रहे हैं। पानी को पकड़ने की प्राकृतिक संरचना पूरी तरह से तहस-नहस हो गई है और इस बेसिन में जलवायु

परिवर्तन के भयंकर दुष्परिणाम सामने आने लगे हैं। आसपास के निवासियों के लिए पीने के पानी से लेकर दैनंदिन जीवन के पानी का घोर संकट आज मुंह बाए खड़ा है।

इतना ही नहीं इस अजय बेसिन पर झारखण्ड में एक बांध और एक बराज बनाए गए हैं जिससे इस नदी के धारा की प्रवाह धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही है। देवघर जैसे विश्व प्रसिद्ध देवनगरी में तथा जसीडीह जैसे औद्योगिक शहर में पानी संकट को दूर करने के लिए नदी में सैकड़ों डीप बोरिंग किए गए हैं। इसके कारण नदी की धारा प्रभावित हुई है। अजय के उद्गम से लेकर भागीरथी में संगम तक बालू की माफियागिरी ने अजय के प्रवाह को बुरी तरह प्रभावित किया है और अब यह नदी मरणासन्न हो गई है।

अजय नदी को बचाने का व्यापक मुहिम चलाए बिना इसका कायाकल्प नहीं किया जा सकता। इस नदी को बचाने के लिए दोनों किनारों पर उद्गम से संगम तक वैसे वृक्षों का रोपण करना पड़ेगा जो पानी को पकड़ते हैं।

इसके साथ-साथ नदी बेसिन में तमाम पत्थर खदानों को बंद करना होगा और पहाड़ों को तोड़ने के लीज रद्द करने पड़ेंगे। साथ ही साथ बेसिन में मिलने वाली तमाम छोटी-बड़ी नदियों का भी समुचित कैचमेंट ट्रीटमेंट करना पड़ेगा। नदी के आसपास डीप बोरिंग को भी बंद करना होगा।

- महेश

लालपुर : स्वावलंबन की ओर बढ़ता एक गांव

इस रिपोर्ट को दिल्ली की संस्था 'पीस' के जितेन्द्र चाहर और अरुण कुमार ने तैयार किया है। यहाँ इसका सारांश दिया जा रहा है

झारखण्ड के मधुपुर प्रखंड का लालपुर एक छोटा सा आदिवासी-मूलवासी बहुल गांव है। यह एक ऐसा गांव है जहां की अधिकांश भूमि पथरीली और वीरान थी। 15 साल पहले गाँव की ऐसी स्थिति थी कि मुश्किल से एक समय का भोजन यहां लोग जुटा पाते थे। लेकिन यहां आज किसान खुशहाली के रास्ते पर आगे बढ़ रहे हैं। गांव के नौजवान, महिला, किसान संगठित होकर सामूहिक श्रम और न्यूनतम संसाधन से उन्होंने गांव की तस्वीर और तकदीर बदलने का काम किया। बरसात का जो पानी बेकार बहकर चला जाता था, ग्रामीणों के साझे प्रयास से चेक डैम बनाकर लिफ्ट इरिगेशन का निर्माण किया गया। इससे पथरीली और वीरान पड़ी जमीन पर बहुफसलें पैदा होने लगीं। पहले किसान सिर्फ बरसात पर निर्भर थे और केवल धान की फसल उगाते थे लेकिन अब धान के अलावा तीन-तीन फसल उगाते हैं। आज लालपुर के किसान स्व-शासन और स्वावलंबन की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। यह संभव हो पाया "जुड़ाव" और "संवाद" के सहयोग से। संवाद झारखंड के 17 जिलों के 750 गांवों में कार्यरत है। इस संस्था से सीधे तौर पर 125 कार्यकर्ता जबकि बतौर वालंटियर 1500 लोग जुड़े हैं। इनमें अधिकतर महिलाएं और युवा शामिल हैं।

2007 में गांव के लोगों के सुझाव पर जुड़ाव संस्था ने पूरे गांव का सर्वे किया। सर्वे में पता चला कि गांव में एक नाला है, जिसमें पूरे साल पानी बहता रहता है। संस्था ने गांव के लोगों की मदद से नाले में एक कुएं का निर्माण किया। कुएं में 10 हॉर्स पावर का डीजल इंजन लगाया गया और खेतों तक पानी पहुंचाने के लिए पक्की नाली का निर्माण किया गया। जुड़ाव संस्था और गांव वालों की मदद से गांव की 50 एकड़ भूमि की सिंचाई की व्यवस्था हो गई। सिंचाई की व्यवस्था हो जाने के बाद गांव में धान, गेहूं, चना, सरसों और सब्जी की खेती शुरू हो गई। खेती में पैदावार बढ़ जाने से लोगों के अनाज की समस्या कुछ हद तक हल हो गई।

धीरे-धीरे गांव के लोगों ने अपनी परती पड़ी जमीनों पर भी खेती करना शुरू कर दिया। खेती का रकबा बढ़ जाने से एक लिफ्ट द्वारा सिंचाई करना संभव नहीं हो रहा था, इस परेशानी से निपटने के लिए गांव वालों ने कुछ नए कुओं का निर्माण किया। नए कुएं बन जाने से खेती का दायरा भी बढ़ गया और उसी अनुपात में कृषि पैदावार भी बढ़ गई। आज गांव में कुल 28 कुआँ हैं। गांव के लोगों ने आपसी सहयोग से लगभग 1 एकड़ में एक तालाब का भी निर्माण किया है जिसमें पूरे वर्ष पानी रहता है। तालाब से खेतों की सिंचाई भी की जाती है और उसमें मछली पालन भी किया जाता है। मछली का उपयोग गांव के लोग स्वयं करते हैं।

मनरेगा के अंतर्गत एक और तालाब का निर्माण लगभग पूरा हो चुका है। खेतों की सिंचाई अब इन 28 कुओं और तालाब द्वारा होती है। लोगों ने कुओं में समर्सिबल पंप लगा रखा है जिससे पानी निकालकर खेतों की सिंचाई करते हैं। पहले वाला कुआं, जो नाले में बना था, इस समय बंद पड़ा है क्योंकि नालियां टूट गई है और डीजल महंगा हो जाने के कारण सिंचाई भी महंगी पड़ रही थी।

गांव वालों ने भू-जल स्तर बरकरार रखने के लिए किसी भी कुआँ में बोरिंग नहीं करवाई है। कुछ साल पहले सिंचाई विभाग ने गांव में डीप ट्यूबवेल लगाने की योजना बनाई थी लेकिन गांव वालों ने सिंचाई विभाग के कर्मचारियों को गांव में डीप ट्यूबवेल लगाने से मना कर दिया। उनका कहना था कि बिना बोरिंग के हमारे खेतों की सिंचाई आसानी से हो जाती है और हमारे कुएं कभी सूखते नहीं है। डीप ट्यूबेल लग जाने से भू-जल स्तर नीचे चले जाने का खतरा है। अगर भू-जल स्तर नीचे चला गया तो हम लोग एक बार फिर से 15 साल पहले की स्थिति में पहुंच जाएंगे। ❖

मूर्ति देवी ने कहा : जंगलवा हमर नईहर समान

मूर्ति देवी जीतपुर गांव की रहने वाली थीं। जीतपुर मधुपुर प्रखंड (झारखंड) का एक गांव है। यह मधुपुर से 25 किलोमीटर की दूरी पर पश्चिम-उत्तर में स्थित जंगल में बसा एक गांव है। जीतपुर गांव दो टोलों में बसा है। एक का नाम प्रधान टोला है जबकि दूसरे टोले को मधवाडीह कहते हैं। इसी प्रधान टोला की थीं मूर्ति देवी।

मूर्ति देवी महज एक महिला का नाम भर नहीं है, बल्कि जीतपुर-चेचाली जंगल बचाओ आंदोलन की वह नेता थीं। यह बात 1981 की है। जनता पार्टी की सरकार बिखर चुकी थी और इंदिराजी फिर से चुनाव जीतकर आ गईं थी।

इंदिरा जी तब देश की हालात को सुधारने के लिए आई एम एफ से समझौता किया था और देश के पर्यावरण को सुधारने तथा गरीबों को रोजगार दिलाने के नाम पर बड़ा कर्ज लिया था। इस कर्ज का एक बड़ा भाग था "सामुदायिक वानिकी" को आगे बढ़ाना। तब सामुदायिक वानिकी के नाम पर बड़े पैमाने पर देश में यूकिलिपट्स और अकेशिया लगाने का काम शुरू हुआ था। उस समय इस वृक्षारोपण का हमसबों ने विरोध किया था। क्योंकि यह सामुदायिक वानिकी नहीं बल्कि व्यावसायिक वानिकी थी। इसी विरोध के दौरान विनय सिंह नामक एक रिटायर्ड फौजी ने यह जानकारी दी कि जीतपुर-चेचाली का जंगल का नीलाम बिहार सरकार ने कर दिया है। उन्होंने कहा कि इस जंगल को किसी तरह बचाना है।

इसी क्रम में हमसब जीतपुर पहुंचे थे और मूर्ति देवी से मुलाकात हुई थी। जीतपुर गांव के लोगों ने जंगल के नीलाम होने की कहानी विस्तार से बताया। फिर आस-पास के गांवों में बैठकें शुरू हुई। इन बैठकों के आयोजन में मुख्य भूमिका मूर्ति देवी निभा रही थीं। सभी गांव के लोगों ने कहा अगर यह जंगल समाप्त हो जायेगा तो हमसब बेरोजगार हो जायेंगे। खाने के लाले पड़ने लगेंगे। फिर सबने तय किया कि किसी भी शर्त पर जंगल कटने नहीं देंगे। "जान देंगे, पर जंगल नहीं देंगे।" लंबे संघर्ष के बाद ठेकेदार को वापस जाना पड़ा और बिहार सरकार को नीलामी वापस लेनी पड़ी। यह आंदोलन की बड़ी जीत थी।

इसी जंगल बचाओ आंदोलन की नेता थीं मूर्ति देवी। आंदोलन के बाद एक सर्वे के दौरान मैंने मूर्ति देवी से पूछा – चाची, आपलोग जंगल को कैसे देखते हैं? क्या समझते हैं?

मूर्ति देवी ने झट से कहा – नुनवा (मतलब बेटा), हमसब जंगल को नईहर मानते हैं। मां का घर। जिस तरह से मां के घर में पूरी आजादी रहती है – घूमने फिरने की, हंसने बिहंसने की, गीत नृत्य करने की, आस-पास कहीं भी जाने की, खेलने कूदने की, गप्पे मारने की, ठीक इसी तरह जंगल हमसबों को पूरी आजादी देता है। और जंगल वह सबकुछ देता है जो नईहर में मिलता है। इसीलिए हमसब जंगल को नईहर मानते हैं। जंगल हमारे लिए मायका समान है।

- ***घनश्याम***

आजीविका के लिए किसी की मोहताज नहीं है 'बोंगामाई'

संवाद' एक लम्बे समय से वंचितों की आजीविका के लिए प्रयासरत रहा है। खासकर कोरोनाकाल में चाहे अप्रवासी मजदूरों के बीच भोजन सामग्री वितरित करने की बात हो या किसानों के बीच पौधा वितरण की बात रही हो, संवाद की ओर से कई महत्वपूर्ण प्रयास किए गए। इस कड़ी में पूर्वी सिंहभूम जिला अंतर्गत मुसाबनी प्रखंड के मेडिया गांव में 'संवाद' की ओर से आम के 10 पौधे, एक टुल्लू पंप व एक डोभा दिया गया। इसके पहले बोंगामाई के पास कहने को तो डेढ़ एकड़ जमीन थी, लेकिन वह पूरी तरह से बंजर थी। पति माइंस में काम करते थे, पर माइंस बंद हो जाने के कारण आजीविका का एकमात्र साधन छिन गया। इसके बाद दोनों ने मजदूरी करके अपने व अपने तीन बच्चों का जीवन-यापन चलाया। ऐसे में 'संवाद' के सहयोग से इनकी रुचि खेती बाड़ी में हुई। अपनी बंजर जमीन पर उन्होंने जमकर मेहनत की। उसे खेती लायक बनाया। उनकी मेहनत अंततः रंग लाई। खेती बाड़ी का क्षेत्र धीरे-धीरे बढ़ता गया। खेती के अलावा उन्होंने बागवानी भी की। आज संवाद के दिए आम के पेड़ के अलावा उनके खेत में कई फलदार पेड़ भी हैं। इसके अलावे बड़े पैमाने पर साग-सब्जी व फसल भी उगाती हैं। बोंगामाई और उसका परिवार आज आजीविका के लिए किसी की मोहताज नहीं है।

प्रस्तुति : सालगे मार्डी

दुमका के बलाबहाल में सामूहिक खेती का सफल प्रयोग

दुमका जिला अंतर्गत केसियाबहाल पंचायत का बलाबहाल गांव मसानजोर डैम से बिल्कुल सटा हुआ है। बलाबहाल गांव में कुल 114 परिवार है जिनमें 238 महिला एवं 215 पुरुष हैं। वर्ष 2022 में वर्षा के अभाव में यहां की खेती का काम नहीं हो पाया था। 'संवाद' यहां एक लम्बे समय से स्वशासन एवं आजीविका के लिए प्रयासरत रहा है। इन्हीं प्रयासों का नतीजा रहा कि यहां कुल आठ स्थाई समितियां गठित की गईं। संवाद द्वारा कृषि समिति के इन्हीं सदस्यों से लगातार संपर्क एवं उन्हें जैविक खेती के लिए प्रेरित करने का परिणाम सकारात्मक सामने आया। ग्राम सभा की एक बैठक में 'सरसों' और 'तीसी' लगाने का प्रस्ताव लिया गया। सुखद यह रहा कि इनमें से 54 परिवार सामूहिक खेती के लिए राजी हो गए। एक अन्य संस्था 'आत्मा' के 50 प्रतिशत अनुदान देने पर 20 किलो तीसी एवं 50 किलो सरसों को कुल 5.30 एकड़ डूब जमीन पर सामूहिक खेती की गई। सामूहिक खेती के इस प्रयास में एकल महिलाओं को प्राथमिकता दी गई थी। बलाबहाल गांव के इस प्रयोग से खिजुरिया, भादुपाड़ा एवं अन्य कई गांवों के ग्रामीण आने वाले समय में सामूहिक खेती करने का निर्णय ले चुके हैं।

प्रस्तुति : ऐनी टुडू व सरिता मुर्मू

जैव विविधता पर बढ़ता खतरा और उसके संरक्षण के तरीके

जैव विविधता को जानने से पूर्व जैव विविधता क्या है? जैव विविधता को क्षति पहुँचाने वाले प्रमुख कारण क्या हैं एवं जैव विविधता के संरक्षण के तरीके को जानना जरूरी है। जैव विविधता यानी 'बायो डाइवर्सिटी' दो शब्दों से मिलकर बना है। साधारण शब्दों में कहें तो 'बायो' का अर्थ 'जीव' तथा 'डाइवर्सिटी' का अर्थ है 'विविधता'। किसी विशेष भोगौलिक क्षेत्रों में निवास करने वाले विभिन्न प्रकार के जीव-जंतु, पशु-पक्षी, कीड़े-मकौड़े, मनुष्य, वनस्पति की मौजूदगी जैव विविधता है। विशेष भोगौलिक क्षेत्रों का तात्पर्य यहाँ किसी देश, किसी राज्य, किसी ब्लॉक, किसी पंचायत, किसी गाँव किसी मोहल्ला आदि से है। जैव विविधता में यहाँ हम सिर्फ जीव जंतु की ही बात करें तो हमारे आस-पास किसी एक नस्ल की इतनी सारी प्रजातियां हैं कि उन्हें उंगलियों पर गिन पाना मुश्किल है। ठीक इसी तरह कीड़े-मकोड़े या जीव-जंतुओं की बात करें तो उनकी गिनती भी दुरुह है।

प्रदूषण, प्राकृतिक आपदा, वनों की कटाई, अवैध शिकार, उत्खनन, विनाशकारी विकास आदि जैव विविधता को क्षति पहुँचाने वाले प्रमुख कारण हैं।

क्यों जरूरी है जैव विविधता

- जैव विविधता के कारण ही मानव वस्त्र, खाद्यान्य एवं अन्य जीवनोपयोगी वस्तुएं प्रकृति से प्राप्त कर पाता है।
- जैव विविधता की वजह से ही एक संतुलित पर्यावरण का निर्माण होता है, मानव व मानवेत्तर प्राणी इसमें जीवित रह पाते हैं।
- जैव विविधताओं के कारण ही खास कर स्वस्थ्य रहने के लिए उपयोगी वस्तुएं प्राप्त कर पाता है।
- पृथ्वी पर जीवन को बनाए रखने के लिए इसका रखरखाव करना बहुत महत्वपूर्ण है। जानवरों, पौधों और सूक्ष्मजीवों की एक विस्तृत श्रृंखला के बिना हम स्वस्थ जैव विविधता की आशा भी नहीं कर सकते हैं। ये सभी इस प्रणाली में अपनी अहम भूमिका निभाते हैं। मानव को प्रकृति से प्रत्यक्ष रूप से अनगिनत आर्थिक लाभ हैं। इमारती सामान, भोजन- पानी, औद्योगिक उत्पाद तथा औषधीय उत्पाद आदि।
- जैव विविधता पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। पेड़ पौधों के द्वारा ऑक्सीजन का निर्माण को इस संदर्भ में देखा जा सकता है।

जैव विविधता के संरक्षण के तरीके

- पृथ्वी का निवासी होने के कारण हम सभी की यह नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि जैव विविधता को संरक्षित करने के लिए प्रतिबद्ध रहें ताकि हमारी भावी पीढ़ी को विरासत के रूप में एक सुंदर, समृद्ध और खुशहाली से भरा पृथ्वी मिल सके।
- विकास की ऐसी व्यावहारिक गतिविधियाँ अपनाईं जाएँ जो प्रकृति का समूल नष्ट करने की शर्त पर न हो।
- मानव के अस्तित्व के लिए जैव विविधता अति आवश्यक है। आज यह अनिवार्य है कि मानव को इकोफ्रेंडली पद्धतियों के प्रति जागरूक किया जाए।
- आज देश और वैश्विक स्तर पर बायो डाइवर्सिटी पार्क बनाये जाने का सिलसिला जारी है। राज्य में रांची का बायो डाइवर्सिटी पार्क इनमें प्रमुख हैं। यह पार्क लगभग 542 एकड़ भूमि में फैला है और इसमें 105 प्रजाति व 38 प्रकार की वनस्पति मौजूद है।

अंत में इस विषय में यही कहा जा सकता है कि जैव विविधता हमारी जरूरतों की पूर्ति जरुर कर सकती है, लेकिन हमारी अंतहीन लालचों की पूर्ति नहीं कर सकती।

- तहा सैफुद्दीन

वनोपज : महिलाओं के रोजगार का माध्यम

आज 'जंगल के वनोपज से रोजगार निकलता' है। उक्त उक्ति को बोकारो जिले के गोमिया प्रखंड सियारी पंचायत की दवार ग्राम सभा के युग मार्शल महिला समूह से जुड़ी महिलाओं ने चरितार्थ कर दिखाया है। गांव के आसपास सैकड़ों महुआ के पेड़ हैं तथा पास में ही लुगू डोंगरी और लुगू पहाड़ है। यहां वनोपज को जीविका का साधन बनाने के लिए हम सबों ने प्रयास किया और माध्यम बनाया महुआ को। महुआ झारखंड के वनोपज में सबसे महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इन दिनों महुआ के कारण युग मार्शल महिला समूह से जुड़ी महिलाओं का जीवन बदल रहा है। महुआ के साथ-साथ वनोपज में केंद और पियार, लाह, ईमली, शाल, कुसुम एवं कई प्रकार की वन औषधि है। महुआ को इसलिए खराब माना जाता है क्योंकि इससे एक मादक पेय बनाया जाता है।

लेकिन अब इसकी पहचान बदलने की कोशिश की जा रही है। झारखंड में संवाद जैसी संस्थाएं हैं, जो महुआ के वैकल्पिक इस्तेमाल पर जोर दे रही है और सफलता भी हासिल कर रही है। खास कर महिलाएं इसके लिए आगे आ रही हैं और महुआ से शराब की जगह कई प्रकार के पौष्टिक खाद्य पदार्थ का निर्माण कर रही हैं। बोकारो जिले के गोमिया प्रंखंड अतंर्गत सिंयारी पंचायत के दवार गांव में युग मार्शल स्वयं सहायता समूह की महिलाएं भी कुछ इसी तरह के प्रयास में जुटी हैं और इसमें काफी हद तक सफल हो रही हैं। आस-पास के गांव में इसका व्यापक प्रभाव पड़ा है और गांव में बदलाव का दौर जारी है।

इसी तरह से कुसुम तथा साल के पत्ते से झारखंड में खाने के लिये पत्तल बनाया जाता है, यह रोजगार के स्थायी साधन हो सकते हैं और महिलाओं के लिए इस क्षेत्र में नया रोजगार का सृजन किया जा सकता है। मेरा मानना है कि सैकड़ों किस्म के वन उत्पाद झारखंड राज्य के लिए आजीविका के एक महत्वपूर्ण साधन हो सकते हैं। इस ओर सरकार को विशेष रुप से ध्यान देने की जरूरत है और वैसी संस्थाओं को प्रोत्साहित करने की जरूरत है जो वनोत्पाद को बढ़ाने के लिए महिलाओं को रोजगार और समाज में आजीविका बढ़ाने की दिशा में लगी हैं। 'आज युग मार्शल महिला समूह' को सहयोग कर रहे लालदीप सोरेन महुआ लड्डू तथा महुआ के अन्य उत्पाद बनाने का प्रशिक्षण कहीं से लिया था। उस प्रशिक्षण से आज वह अपने रोजगार का साधन का रास्ता भी खोल लिया है। आज युग मार्शल महिला समूह से कई संस्थाएं और महिला समूह प्रशिक्षण लेकर महुआ लड्डू या महुआ के उत्पाद बनाकर रोजगार बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं। इस दिशा में अभी तक युग मार्शल महिला समूह की पार्वती, मीना मुर्मू एवं लाल दीप सोरेन ने प्रदान संस्था के महिला समूह जेएसएलपीएस (महुआ टांड) गोमिया की महिला समूह तथा गोमिया के आशा बिहार संस्था के महिला समूह को प्रशिक्षण देने का काम किया है। इस प्रशिक्षण से युग मार्शल महिला से जुड़ी हुई पार्वती और मीना मुर्मू को आर्थिक लाभ भी हो रहा है। जिस महुआ से केवल शराब बनती थी आज बोकारो जिले में महुआ लड्डू, अचार, जैम के उत्पाद के लिए स्थापित हो रही है और रोजगार के नए-नए अवसर के निर्माण हो रहे हैं।

(सन्दर्भ बोकारो का दवार गाँव)

- गुलाब

‘फास्ट फूड’ बनाम ‘स्लो फूड’

आज दुनिया भर में फास्ट फूड का प्रचलन तेजी से बढ़ा है। भूमंडलीकरण के दौर में जहां बाजार युवाओं,किशोरों और महिलाओं को लुभाने के लिए तरह-तरह के उपाय ढूंढ निकाले हैं वहीं रसोईघर में भी डिब्बाबंद भोजन की मात्रा लगतार बढ़ रही है। इसका भयावह नतीजा सामने आने लगा है। पेट, लीवर, किडनी, दिल और डायबिटीज के मरीजों की संख्या में दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो रही है। पश्चिम और उत्तर के देशों से चली यह प्रक्रिया अब हाट-बाजारों में एक फैशन सी बन गई है वहीं अधिकांश खाते-पीते परिवारों के रसोईघरों में डिब्बाबंद मसाला से लेकर खान-पान की अन्य सामग्री की भरमार होती जा रही। कहने को ये सारे खान-पान पौष्टिक हैं लेकिन अधिकांशतः यह देखा जा रहा कि इन डिब्बा बंद फास्ट फूड के कारण लोग ज्यादा बीमार पड़ रहे हैं। बच्चों और किशोर-किशोरियों का मोटापा तेजी से बढ़ रहा है। खानपान में वसायुक्त पदार्थ ज्यादा रहने के कारण लोगों की चर्बी बढ़ रही है जिससे बैड कैलोस्ट्रोल की मात्रा में बढ़ोतरी हो रही है। कम उम्र के किशोर भी अब दिल की बीमारी से दम तोड़ रहे हैं। यह फास्ट फूड जहां एक तरफ बच्चों में कुपोषण बढ़ा रहा है वहीं उनसबों का शरीर थुलथुल होता जा रहा है।

लेकिन यह बात भी उतनी ही सच है कि अब दुनिया के कई देशों में स्लो-फूड आंदोलन आकार ले रहा है। इटली से एक आंदोलन पिछले दशक से शुरू हो गया है जिसे “टेरा माड्रे” नाम से पुकारा जाता है। इसका हिंदी अनुवाद है – “हे धरती माता”। इस आंदोलन ने दुनिया के कई देशों में अपनी पहुंच बनाई है। कोविड के दो वर्ष पूर्व शिलांग में (मेघालय) इस बैनर तले दुनिया के कई देश के लोग शामिल हुए थे। इसमें झारखंड के हम कुछ साथियों को शामिल होने का अवसर मिला था। इस जुटान में सैकड़ों किस्म के स्लो-फूड परोसे जा रहे थे। ऐसे आंदोलन के प्रति लोगों का रुझान बढ़ता जा रहा है। इसमें विभिन्न प्रकार के जंगल में उपजने वाले रूट्स, साग-भागी और वैसे अनाज थे जो अब धीरे-धीरे विलुप्तप्राय होते जा रहे हैं। इन अनाजों को दैनन्दिन भोजन में स्थान देकर इन सब भोज्य पदार्थों के उत्पादन बढ़ाने की दिशा में ठोस पहल हो सकती है।

यह खुशी की बात है कि वर्ष 2023 को मिलिट्स वर्ष घोषित किया गया है। लेकिन यह किसी की सदाशयता नहीं है बल्कि पिछले कुछ वर्षों में कई प्रदेश की संस्थाओं और जन संगठनों ने मिलकर मिलिट्स के प्रति जो जागरूकता पैदा की थी, उसकी सामूहिक और सार्वजनिक अभिव्यक्ति है – मिलिट्स वर्ष की घोषणा ! निश्चित तौर पर तेलंगाना और आंध्रप्रदेश की सरकारों ने पहलकदमी की थी जिसका प्रभाव उड़ीसा पर भी पड़ा। परिणामत: उन राज्यों की सरकारों ने मिड-डे-मिल और आंगनबाड़ी में मिलिट्स खासकर मड़ुआ (रागी) को भोजन में सम्मान जनक स्थान मिला। विज्ञान यह बतलाता है कि मड़ुआ में अन्य अनाजों से कहीं ज्यादा पौष्टिक तत्व हैं। देश के अन्य राज्यों को भी इस दिशा में ठोस कदम उठाने चाहिए। रागी जैसे दर्जनों अनाज को ठीक ढंग से प्रोसेस करके बच्चों के लिए पौष्टिक भोज्य पदार्थ बनाया जा सकता है। इसकी रुचि बढ़ाकर बाजार के फास्ट फुड का मुकाबला किया जा सकता है।

- घनश्याम

देशज चिकित्सा ज्यादा प्रासंगिक

देशज चिकित्सा का तात्पर्य उस चिकित्सा पद्धति से है, जो परंपरा से चली आ रही है एवं अनुभवजन्य ज्ञान से विकसित होती रही है। यह सर्व पुरातन चिकित्सा पद्धति है जो स्वास्थ्य की पहरेदारी करती रही है। इसे आदिवासी चिकित्सा पद्धति या होड़ोपैथी भी कहा जा सकता है। गौरतलब है कि आदिवासी शब्द जातीय संकीर्णता का बोध नहीं बल्कि पुरातन जनजीवन पद्धति का बोध कराता है। यही देशज चिकित्सा है। इससे इतर कई चिकित्सा पद्धतियां हैं, जो आधुनिक चिकित्सा पद्धतियां कहलाती हैं, जिनके अंतर्गत आयुर्वेद एवं एलोपैथिक चिकित्सा पद्धतियां हैं। इन्हें बाजारू चिकित्सा के अंतर्गत रखा जा सकता है। यह बाजार के पूर्ण नियंत्रण में होती है। जन स्वास्थ्य बाजारू चिकित्सा के मकड़जाल में फंसकर त्राहिमाम-त्राहिमाम कर रहा है। मगर कुछ नए नए रोगों के विकास और विस्तार से बाजारू चिकित्सा की भूमिका काफी अहम हुई है। इस संदर्भ में एलोपैथिक का स्थान महत्व का है।

पुरातन काल से ही वैद्य परंपरा से सामुदायिक स्वास्थ्य, जन स्वास्थ्य सुरक्षित रहा है। प्राचीन काल के वैद्य अति कुशल हुआ करते थे और अपने अनुभव और कुशलता से गंभीर बीमारियों का इलाज भी वे सफलतापूर्वक कर लेते थे। नाड़ी परीक्षण की उनकी कुशलता बहुत ही सराहनीय थी। वे नाड़ी पारखी होते थे। जड़ी बूटियों को अनुकूल समय पर तोड़ने और संग्रह करने की कला में वे प्रवीण होते थे। मगर समय के साथ-साथ देशी चिकित्सा (जड़ी-बूटी चिकित्सा) का ह्रास होता गया और जड़ी-बूटी की भी सहज उपलब्धता नहीं रही। समुदाय, समाज और सरकार का ध्यान भी इससे दूर हटता गया। पुराने जानकार और कुशल वैद्य काल के गाल में समाते चले गए। बचे वैद्य की कुशलता और बढ़े इस पर समुचित चिंता और कार्यक्रम नहीं किए गए। वर्तमान काल में जन स्वास्थ्य संदर्भ में ऐसा करना समय की मांग है। क्या स्वार्थ से परे रहकर ऐसा किया जा सकता है? साथ ही क्या बाजारू चिकित्सा पर अर्थ का भार कम किया जा सकता है? ताकि गरीब जनता के लिए भी यह सर्व सुलभ हो सके। क्या गांव-गांव में ईमानदारी पूर्वक जड़ी-बूटी उद्यान विकसित की जा सकती है? ग्रामीण वैद्यों की जानकारी और कुशलता बढ़ाने के लिए ईमानदारी के साथ प्रशिक्षण कार्यक्रम किए जा सकते हैं? अगर समुदाय, समाज, संस्थाएं और सरकार शुद्ध मन से ऐसा करने के लिए तैयार हो तो देशी चिकित्सा पुनः बुलंदियों को छू पायेगा और सर्व सुलभ जन स्वास्थ्य की कल्पना साकार हो पाएगी।

जंगल जड़ी बूटियों का प्राकृतिक भंडार होता है और इस प्राकृतिक भंडारण का विनाश हो रहा है। जंगलों से कीमती जड़ी- बूटियां खोदकर निकाली जा रही है जो आयुर्वेदिक कारखानों के लिए आपूर्ति की जा रही है, जिससे औषधि तैयार कर ऊँचे दामों में गरीब जनता को सुलभ कराया जा रहा है। क्या ग्राम सभाएं सजग होकर इस पर रोक लगा सकती है? ताकि जंगल में जड़ी- बूटियों का संरक्षण हो सके एवं विलुप्त जड़ी-बूटी की विभिन्न प्रजातियों को बढ़ाया जा सके।

प्रस्तुति : श्यामलाल

आदिवासी चित्रकला में पर्यावरण

आदिवासी चित्रकला और पर्यावरण एक दूसरे से अटूट रूप से जुड़े हुए हैं। आदिवासी समुदायों का प्रकृति के साथ गहरा संबंध होता है और उनकी कला में यह संबंध सहज ही दिखता है। प्राचीन काल से ही मनुष्य पशु-पक्षी, फूल-पत्ते, पेड़-पौधे, जंगल-पहाड, नदी-झरने, चाँद-तारे, धरती-आकाश आदि की सुंदरता को निहारता रहा है और प्रकृति में बिखरे सौंदर्य को अपनी आँखों और जीवन में बसाने का प्रयास करता रहा है। आदिवासी चित्रों में पर्यावरण अक्सर प्रतीकात्मक रूप में उकेरे जाते रहे हैं, जो प्रकृति की दुनिया और समुदाय के साथियों के रिश्ते को प्रतिष्ठित करते हैं। पर्यावरण के प्रतीकात्मक रूपों का प्रयोग आदिवासी समाज के गहन नैतिक और आध्यात्मिक विश्वासों को प्रकट करता है। प्रकृति चित्रण: आदिवासी कला में जल, जंगल, जमीन, पहाड़, नदी और अन्य भूगोलीय सुंदरताओं के साथ साथ पौधे, पशु, पक्षी, भंवरे आदि का जीवंत चित्रण किया जाता है। इससे आदिवासी समुदायों के प्राकृतिक वातावरण की समृद्ध जैवविविधता को दर्शाया जाता है।

पशु-पक्षी : आदिवासी लोक चित्रकला में पशु-पक्षियों का सुंदर चित्रण किया जाता है। आदिवासी चित्रकला में जंगली पशु जैसे बाघ, शेर, हाथी, सिंह, लोमड़ी, नीलगाय, चीता, बंदर, वन्य सुअर आदि के साथ साथ विभन्न प्रकार के पक्षी जैसे- मोर, तोता, कबूतर, चिड़िया, मैना, तोतापक्षी, बाज और गिद्ध आदि का चित्रण देखने को मिलते हैं।

प्रतीकात्मकता : आदिवासी कला में सांस्कृतिक और पारिस्थितिक महत्व रखने वाले प्रतीकों और रूपांकनों का चित्रण मिलता है। ये प्रतीक समुदाय के आध्यात्मिक और पारिस्थितिक विश्वासों को व्यक्त करते हुए प्राकृतिक तत्वों जैसे सूर्य, चंद्रमा, पानी या जानवरों का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं।

पेड़-पौधे : पेड़ आदिवासी चित्रों में एक महत्वपूर्ण प्रतीकात्मक रूप है। पेड़ पृथ्वी और आकाश के मध्यस्थता, जीवन की प्राकृतिक प्रवृत्ति और मानव-प्रकृति के संबंध को दर्शाता है। पेड़ों को आदिवासी अपने जीवन का अनुपम भाग मानते हैं जो उन्हें खाद्य, औषधि, लकड़ी, हल बनाने के लिए उपयोग में आते हैं। आदिवासी चित्रों में पेड़ के जड़ों का प्रतीकात्मक चित्रण किया जाता है। इसे जीवन की उत्पत्ति, प्रजनन, संवर्धन और संरक्षण का प्रतीक माना जाता है तो वहीं पेड़ की शाखाओं और पत्तों का

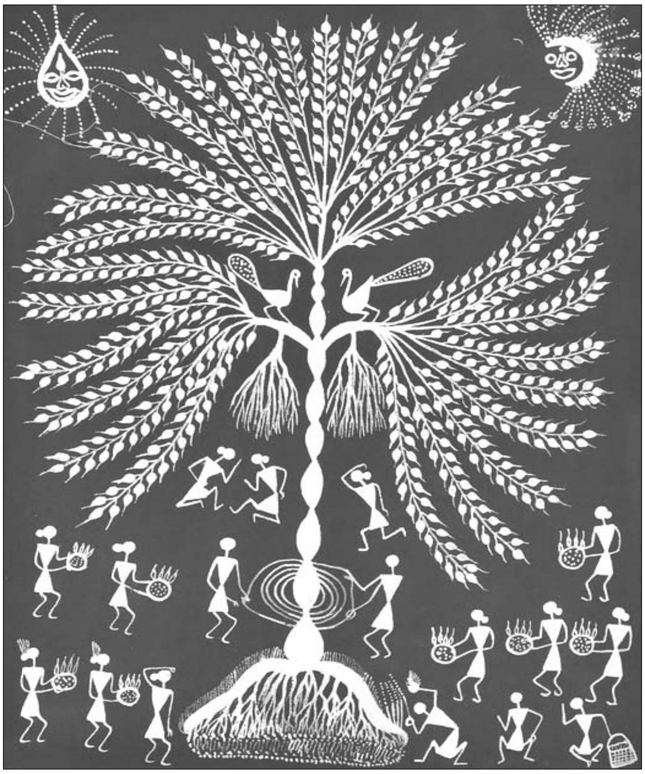

चित्रण अक्सर पेड़ की विविधता, प्रगति और संवेदनशीलता का प्रतीक होती हैं। पेड़ की शाखाओं का निरूपण उनके सामाजिक और धार्मिक महत्व को भी दर्शाता है।

जंगल : आदिवासी चित्रकला में जंगल की प्राकृतिक समृद्धि, जीवन्तता और संतुलन को दर्शाते हैं। जंगल में बहने वाली नदियाँ, झरने और तालाब भी आदिवासी चित्रकला में प्रतिष्ठित होते हैं, जो जंगली प्राकृतिक दृश्यों को बढ़ावा देते हैं।

चित्रण के लिये सामग्री : आदिवासी कलाकार अक्सर अपनी कलाकृति में पारंपरिक और टिकाऊ सामग्री का इस्तेमाल करते हैं, जैसे कि प्राकृतिक रंग, मिट्टी, लकड़ी, पत्थर आदि। इन सामग्रियों को स्थानीय पर्यावरण से प्राप्त किया जाता है, जो समुदाय की निर्भरता और उनके प्राकृतिक संसाधनों के प्रति सम्मान को प्रदर्शित करता है। कुल मिलाकर, आदिवासी चित्रकला आदिवासी समुदायों और उनके पर्यावरण के बीच गहरे संबंध की दृश्य अभिव्यक्ति के रूप में कार्य करती है। यह भावी पीढ़ियों के लिए प्रकृति की रक्षा और संरक्षण की आवश्यकता पर जोर देते हुए, उनके पारिस्थितिक ज्ञान, आध्यात्मिक विश्वासों और टिकाऊ परंपराओं को दर्शाता है।

- शेखर